हमारी बात

चलो सेक्स की बात करें

मैं लोगों को उकसाने का काम हमेशा करती रही हूं। नब्बे के दशक के दौरान विकास के क्षेत्र में अधिकारों पर होने वाली मीटिंगों के दौरान मैं हमेशा पूछती, 'आप जेंडर के बारे में क्या सोचते हैं?' यह सवाल सुनकर चेहरों पर उभरने वाले भाव मुझे आज भी याद हैं। उनके भावों में एक तड़प थी 'हे भगवान! ये नारीवादी है!' एक दशक गुज़रने के बाद मैं अभी भी महिला अधिकारों की मीटिंगों में अपने आपको सवाल पूछते हुए पाती हूं। अब सवाल होता है 'यौनिकता के बारे में आपके क्या विचार हैं?' यह सवाल सुनकर भी चेहरों पर अलग-अलग तरीके के भाव दिखाई देते हैं। ये भाव 'गुमराह/गंदी' से लेकर 'हे भगवान! यह लेस्बियन है' तक होते हैं। सूरतेहाल अजीब स्थिति रही है।

मगर क्या ये सवाल ऐसे हैं जो पूछने ही नहीं चाहिए? क्या जेंडर और यौनिकता हमारी ज़िन्दगियों के स्वाभाविक अंग नहीं हैं? क्या हमें ये सवाल इसलिए नहीं पूछने चाहिए, ताकि इनसे उपजी चर्चाओं से कुछ हद तक हमारे आसपास की दुनिया में बदलाव आ सकता है? इन शब्दों में ऐसा क्या है जिससे लगता है कि कुछ अप्रिय सामने आ जाएगा जिसको संभालना असंभव व मुश्किल होगा?

शायद लोग मुझसे इसलिए डरते रहे हैं क्योंकि मैं यौनिकता के बारे में बात करती हूं और इन मुद्दों पर प्रशिक्षण भी देती हूं। इसकी तुलना में जेंडर बहुत आसान शब्द लगता है। मैंने जानने का प्रयास किया कि ऐसा क्या है जिससे लोग इतना घबरा रहे हैं? इन दोनों शब्दों में ऐसा क्या है कि लोग इन्हें अपने काम में शामिल नहीं कर पाते हैं?

जब मैंने विकास के क्षेत्र में काम करना शुरू किया— या आजकल की राजनैतिक रूप से सही भाषा में मुझे कहना चाहिए कि जब मैंने मानव अधिकार के मुद्दों पर काम करना शुरू किया— तब जेंडर को एक राजनैतिक शब्द माना जाता था। कितने बरसों तक हमारे पास ऐसा कोई उपयुक्त तरीका नहीं था जिससे समाज में औरतों की अहमियत का अंदाज़ा हो सके। यहां तक कि हमें यह भी पता नहीं था कि हमारा गांव में जाकर एक बूढ़े पुरुष से गांव की औरतों की समस्याओं के बारे में पूछना ठीक है भी कि नहीं। सालों तक इस तरह की स्थिति के बाद जेंडर शब्द हमें मिला था। जेंडर एक ऐसा शब्द था जिसकी मदद से मर्दों को अपनी पत्नी के बारे में यह कहने से रोका जा सकता था कि 'वो काम नहीं करती'। जेंडर शब्द की वजह से मर्दों को यह कहने से भी रोका जा सकता था कि अगर औरतें पैसे नहीं कमातीं, तो उनकी कोई अहमियत नहीं है। जेंडर से ऐसी क्रांति आई जिसकी वजह से कई खोजें हुई। इससे जेंडर समता और जेंडर समानता में बेहतर क्या है, इसके बारे में चर्चाएं हुई। जेंडर मुख्यधारा की निराली दुनिया भी जेंडर से ही मिली।

फिर जेंडर का इस्तेमाल एक राजनैतिक साधन के रूप में होना बंद हो गया। सभी स्वयंसेवी, गैर सरकारी संस्थाएं इस पर काम करने लगीं। डोनर और महिला संगठन इसकी मांग करने लगे। हर प्रशिक्षण कार्यशाला की शुरूआत सेक्स (लिंग) और जेंडर के फ़र्क़ से होने लगी जिसमें सेक्स को जैविक ठहराया जाता और जेंडर को सामाजिक। इसके साथ होने लगे औरतों के लंबे कमरतोड़ काम के और मर्दों के कम काम के वर्णन। इन सर्वव्यापक जेंडर प्रशिक्षण के लिए बहुत सी औरतों को नियुक्त किया जा रहा था और संस्थाएं दावा करने लगीं कि चूंकि उनके कर्मचारियों ने जेंडर के एक प्रशिक्षण में भाग ले लिया है, उनकी जेंडर मुख्यधारा पर काम की भागीदारी पूरी हो गई है।

यह सब देखकर मैं हताश होने ही लगी थी कि मुझे महसूस हुआ कि यौनिकता शब्द महिला आंदोलन के शब्दकोष में फैल चुका है और एक ठोस राजनैतिक साधन भी माना जाने लगा है। उसी समय मुझे समझ आया कि सिर्फ़ जेंडर भूमिका के बारे में बात करना फिजूल होगा। मुझे एक बड़ा और पेचिदा संसार सामने दिखने लगा जिसमें दमनकारी विषमलैंगिक विचारधारा का स्पष्ट अभाव था। मुझे नज़र आया कि जेंडर के अनुरूप न चलने से लोगों को बहुत समस्याएं हो रही थीं— शादी के बिना साथ रह रहे लोगों को अपमान का सामना करना पड़ रहा था, उन पर ज़बरदस्ती शादी थोपी जा रही थी। स्कूल दूर होने की वजह से लड़कियों का स्कूल छुड़वाया जा रहा था। अभिभावकों को लड़कियों की सुरक्षा की चिंता थी और लड़की की इच्छा की अभिव्यक्ति से डर लगता था। वहीं भारत के नारी आंदोलन को लेस्बियन शब्द कहने में हिचकिचाहट थी और यौनिकता को हर बार हिंसा से जोड़ दिया जाता था।

तब मैंने जेंडर और यौनिकता को संयुक्त रूप से देखा और वही पुराने सेक्स विपरीत जेंडर के विवाद पर पुनः विचार किया। हम समझते हैं कि सेक्स (लिंग) जैविक/नैसर्गिक है और मर्द और औरत के अंगों को दर्शाता है, जबकि जेंडर समाज ने बनाया है और औरत और मर्द की भूमिकाओं को दर्शाता है। इसके बावजूद मेरी सोच और सीख ने यह स्पष्ट किया कि सेक्स का निर्माण भी किया जा सकता है और यदि कोई अपना सेक्स बदलना चाहता है, तो उसे रोका नहीं जा सकता।

इस वजह से मैंने सेक्स की अपनी परिभाषा को बदला। सेक्स का मतलब है वे जैविक लक्षण जो व्यक्ति को औरत या मर्द निर्धारित करते हैं। यह जैविक लक्षण परस्पर भिन्न नहीं हैं, क्योंकि ऐसे व्यक्ति भी हैं जिनमें दोनों जैविक लक्षण मौजूद हैं। यह लक्षण व्यक्तियों में औरत या मर्द का फ़र्क़ निर्धारित करते हैं। इस परिभाषा में मैंने जोड़ा कि अगर कोई चाहे तो सेक्स को बदला या बनाया भी जा सकता है।

इसके बाद आया यौनिकता का संसार जिसमें जेंडर, सेक्स और बहुत कुछ एक साथ में शामिल था। अब हमको संवेदना, व्यवहार, जेंडर पहचान और भूमिका, यौनिक रूझान, कामुकता, आनंद, घनिष्ठता और प्रजनन— को ध्यान में रखना था। हमें चर्चा करनी थी कि यौनिकता को किस तरह सोच, सपनों, इच्छाओं, धारणा, रवैयों, परंपराओं, बर्ताव, दस्तूर, भूमिकाओं और रिश्तों में अनुभव और अभिव्यक्त किया जा रहा है। हमें यह भी मंजूर करना था कि जबकि यौनिकता के यह सब आयाम हो सकते हैं, सभी आयाम हमेशा

अनुभव या व्यक्त नहीं किए जाते हैं। हमें यह बात भी ध्यान में रखनी थी कि यौनिकता पर जैविक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, नैतिक, कानूनी, ऐतिहासिक, धार्मिक और आत्मिक — कारणों का प्रभाव पड़ता है।

तो भारत में हमारा सेक्स और यौनिकता की नई दुनिया से परिचय हो गया। हम कोशिश कर रहे हैं ऐसे तरीके खोजने की जिससे यह सब एक ऐसी भाषा में तब्दील हो सके जिसको सभी समझ सकें और अपनी समझ को चुनौती देने के लिए इस्तेमाल भी कर सकें। ऐसा करने में चुनौतियां बहुत हैं।

हम किस तरह अस्थिरता के मुद्दों का सामना कर सकते हैं? हम एक ऐसी दुनिया से परिचित हैं जिसमें सिर्फ़ औरत और मर्द ही शामिल किए जाते हैं। अब हमें इस पूरी व्यवस्था को नए नज़रिए से देखने का मौका मिला है। हमारे आसपास मर्द जैसी दिखने वाली औरतें हैं और औरतों जैसा महसूस करने वाले आदमी। अदल-बदल, उलट-फेर, हर तरफ, हर समय संभव है। अगर हम अपनी दुनिया को दोयम न बनाएं, तो 2हमारे सामने अनन्त सम्भावनाएं होंगी और हमें अपने आपको किसी भी तरह से सीमित करने के लिए बाध्य नहीं होना पड़ेगा।

हम सहमति/स्वीकृति के बारे में क्या सोचते हैं? हमने देश में कानूनी सुधारों मे बहुत समय लगा दिया है। इस काम में हमारा तर्क रहा है कि स्वीकृति यह पता लगाने का आधार है कि कोई यौनिक क्रिया बलात्कार है या नहीं। हम औरत के हां या ना कहने की क्षमता में तो यकीन करते हैं, लेकिन जब बात यौन कर्मियों की हो, लेस्बियन या औरतों को चाहने वाली औरतों की, तो हम उन पहचानों को पुष्टि और उनकी यौनिक पहचान के साथ उनको मान्यता देने को तैयार नहीं होते। हम उनकी यौनिकता को असामान्य रूप से देखते हैं और उन्हें उनके वर्तमान से बाहर निकालने की बात करते हैं।

युवतियों की यौनिकता के बारे में हमारी सोच क्या होती है? हम युवतियों की यौनिकता को स्वीकारने में हिचकिचाते हैं और सोचते हैं कि वे तभी यौनिक रिश्ते रखेंगी जब वे 'कानूनी' तौर पर सही उम्र की हो जाएंगी। हम विषमलैंगिकता और समलैंगिकता की दमनकारी विचारधारा को किस प्रकार देखते हैं? हम एक ऐसी दुनिया में रहते हैं, जहां औरत और मर्द ही शादी करते हैं और परिवार बनाते हैं। इस व्यवस्था में किसी और तरीके की भागीदारी स्वीकृत नहीं है। वहीं समलैंगिक समाजों में, हम एक ही तरह की चाहत देखना चाहते हैं और इसलिए उन औरतों को शामिल नहीं कर पाते जो मर्दों और औरतों दोनों को चाहती हों या वे औरतें जो अपने आपको कुछ समय के लिए ही लेस्बियन कहना पसंद करती हों।

हिंसा का असर सब पर होता है, इस पर हमारे क्या विचार हैं? जब हम लैंगिक उत्पीड़न या हिंसा की बात करते हैं, हम सिर्फ़ औरतों के बारे में सोचते हैं। हम इसमें उन मर्दों को शामिल नहीं करते जो 'मर्दानगी' के ढांचे में न आने के कारण यौनिक व लैंगिक उत्पीड़न का सामना करते हैं। न ही हम उन औरतों की बात करते हैं जो औरतों जैसी नहीं दिखतीं। उसी तरह, यौनिकता और विकलांगता के बारे में सोचते समय हम जिस विचारधारा को मानते हैं, उसमें सिर्फ़ 'योग्य' शरीर के लोग ही शामिल होते हैं।

यौनिकता हमारे सामने एक ऐसी दुनिया प्रस्तुत कर रही है जिसमें हम फिर से प्रश्न उठा सकते हैं और आज की व्यवस्था बदल सकते हैं। इसके बावजूद हम उसी सोच के साथ बंधना चाहते हैं जिससे हम पिछले कई सौ सालों से बंधे हैं। यह दुनिया बदल रही है और हमें इस बदलाव का सामना करना चाहिए ताकि इस दुनिया की औरतों के सामने पहले से ज़्यादा विकल्प हों, वे बिना बंधनों के अपना जीवन जी सकें और एक ऐसे भविष्य की तरफ जा सकें जो उनकी चाहतों और सपनों के अनुरूप हो।

— प्रमदा मेनन